International Journal of Applied Research 2019; 5(6): 74-76

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(6): 74-76
www.allresearchjournal.com
Received: 04-04-2019
Accepted: 06-05-2019

प्रियंका कुमारी
इतिहास विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Correspondence
प्रियंका कुमारी
इतिहास विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

श्री रामकृष्ण के उपदेशों में सर्वधर्म समभाव

प्रियंका कुमारी

प्रस्तावना

युगावतार श्री रामकृष्णदेव का अवतरणं ऐसे समय हुआ था जब कि विश्व में विभिन्न प्रकार के धार्मिक मतवादों का प्रचलन अपनी चरम सीमा पर था। प्रत्येक धर्ममतावलम्बी अपने ही धर्म को श्रेष्ठ प्रमाणित करने में अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा व्यय करता था। प्रत्येक धर्ममतावलम्बी परस्पर एक दूसरे के विरोधी प्रमाणित हो चुके थे। हिन्दू इस्लाम का विरोधी, इस्लाम हिन्दू का एवं ईसाई का विरोध करने में ही अपने को गौरवान्वित समझता था, और यह परम्परा ऐन–केन प्रकारेण आज भी सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान है। युगावतार श्रीरामकृष्ण ने अपने विभिन्न साधना मार्गों के द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि परमतत्व एक हैं, उस एकतत्व को विश्व के विभिन्न मतावलम्बी विभिन्न नामों एवं रूपों में जानते एवं मानते है। विभिन्न नामों एवं रूपों के ही कारण धार्मिक अवधारणा में कभी भी मतैक्य नहीं हो पाया, तथा प्रत्येक धर्म अपने आपको दूसरे धर्म का विरोधी मानता रहा।

श्रीरामकृष्ण ने अपने धर्म समन्वय के सिद्धान्त में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि यदि परमात्मा जो जगत का मौलिक तत्व हैं वह जगत का श्रृष्टिकर्ता पालनकर्ता संहारकर्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी तत्व है। वह अनेक नहीं एक हैं। उसका नामकरण कुछ भी हो सकता हैं, हम उसे अल्लाह, गाड, ब्रह्म, ईश्वर जिस किसी भी रूप में जानते या मानते हैं तत्वतः वह एक है। जिस प्रकार पानी को वाटर, जल, नीर, अम्बू आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है किन्तु इन विभिन्न सम्बोधनों के परिणामस्वरूप जलतत्व विभिन्न प्रकार का नहीं होता, उसी प्रकार परमात्मा भी विभिन्न नामों से सम्बोधित होते हुए भी विभिन्न नहीं है। वह एक एकतत्व है। वह एकतत्व ही इस्लाम धर्म के अनुसार अल्लाह, ईसाई धर्म के अनुसार गाड, हिन्दू धर्म के अनुसार ब्रह्म है। तत्वतः उसमें कोई विभेद नहीं है।

जिस समय हिन्दू धर्म विवादों में पड़ा था। जिस समय हिन्दू धर्म के कुछ अंशों को लिया जा रहा थाय कुछ को छोड़ा जा रहा थाय जिस समय धर्म की निन्दा इसलिये हो रही थी कि इसमें मूर्ति पूजा, अंध विश्वास और रूढियां फैली हुई है, जिस समय अनेक अनेक धर्मावलम्बी महापण्डित विवाद का वितंडावाद खड़ा कर रहे थे, हिन्दू मुसलमान और ईसाई अपने–अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध कर रहे थे और अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्मों का शरण लेकर लांछनाओं से लज्जित होकर हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिये झूठा और मन को भुलावा देने वाला प्रयास कर रहे थे, उसी समय श्री रामकृष्ण ने उसी प्राचीन सनातन धर्म और उसकी विभिन्न शाखाओं तथा विश्व के जीवन्त धर्मों की साधना करके एक चिर नवीन धर्म की स्थापना की। उनका यह समन्यवय मौखिक या भाषणों के माध्यम से नहीं हुआ जिस मूर्ति पूजा का खण्डन किया जा रहा था उसी काली की पत्थर की मूर्ति को इस अनपढ़ पाण्डित्यहीन पूजारी ने जीवन्त कर दिया। हिन्दू धर्म में अद्वैत वेदान्त, वैष्णव धर्म, शाक्त धर्म की तो साधनायें की ही, इस्लाम और मसीही धर्म की भी साधना की। तीर्थों में गये देवी देवताओं में उनकी आस्था थी। जीवित विश्वास था।

श्री रामकृष्ण ने अपने शिष्यों से कहा था ''मैंने सभी धर्मों का अनुशरण किया है – हिन्दू, इस्लाम, मसीही और विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों के मार्ग पर भी चला हूँ। मैंने पाया है कि सभी एक ही ईश्वर की ओर बढ़ते है, यद्यपि अलग–अलग मार्गों से। तुम्हें एक साथ ही सब विश्वास परखने और सब मार्ग पार करने चाहिए। मैं जिधर देखता हूँ लोगों को धर्म के नाम पर झगड़ते हुए पाता हूँ – हिन्दू, मुसलमान, ब्राम्ह, वैष्णव वगैरह पर वे लोग नहीं देखते कि जिसे कृष्ण कहा जाता है उसी को शिव कहा जाता है, वही आद्या शक्ति है, वही ईसा और वही अल्लाह भी, वही सहस्त्र नामधारी राम भी। एक ही तालाब के अनेक घाट है। एक से हिन्दू घड़ा भरते है वह जल होता है, दूसरे से मुसलमान मशक भरते है, वह पानी होता है, तीसरे से ईसाई लेते है वह वाटर कहलाता है। क्या हम कल्पना भी कर सकते है कि वह द्रव जल नहीं है पानी या वाटर है? कैसी मूखर्ता होगी वह। एक ही तत्व के अनेक नाम है। हर कोई एक ही परम तत्व की तलाश में है। देश, काल, स्वभाव नाम बदलते है पर तत्व नहीं बदलता। प्रत्येक अपने–अपने मार्ग से चलें अगर उसमें सच्चाई और लगन है तो उसका कल्याण होगा उसे अवश्य भगवान मिलेगें।

श्री रामकृष्ण हिन्दू धर्म में प्रचलित साकार और निराकार की अवधारणा में भी समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते है। उनके अनुसार परमतत्व साकार भी हैं निराकार भी हैं, इसलिए साकारवादी एवं निराकारवादी में विद्यमान विभेद अल्पज्ञता का ही प्रतीक है। निराकार वादी परम्तत्व को निराकार मानते हुए धर्म की व्याख्या करता है। तथा ब्रह्म के निर्गुण निराकार स्वरूप की विवेचना करता है। तथा साकारवादी परम्तत्व को साकार मानते हुए उसे दयालु, कृपालु, पतितपावन, भक्तवत्सल आदि गुणों से सम्बोधित करते हुए दार्शनिक दृष्टि से सगुण सकारवाद का प्रतिपादन करता है। श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में साकार और निराकार में भेद नहीं है। ज्ञानमार्गी उस परम् तत्व को निराकार मानते हुए

जगत् की व्याख्या करता हैं। तथा भक्ति मार्गी उस परम तत्व का साकार मानते हुए जगत् की व्याख्या करता है। तात्विक दृष्टि से इसमें किसी भी प्रकार का विभेद नहीं है। श्रीरामकृष्ण यह प्रमाणित करते है कि ज्ञान की उष्णता से साकार. बर्फ पिघलकर निराकार जल में परिवर्तीत हो जाता है, तथा निराकार जल भक्ति शीतलता से साकार बर्फ का आकार धारण कर लेता है। इस उदाहरण से यह प्रमाणित हो जाता हैं कि ज्ञानमार्ग की दृष्टि से वहीं परम्तत्व निराकार प्रतीत होता है, और निर्गुण के रूप में उसकी व्याख्या सम्भव हो जाती है, जबकि भक्तिमार्ग की दृष्टि से वहीं तत्व साकार प्रतीत होता है। वहीं तत्व दयामय, कृपामय, करूणामय प्रतीत होने लगता है। तात्विक विभेद नहीं होता, विभेद भावनात्मक है। यदि भावना में विभेद नहीं हैं, तो तत्व में विभेद प्रतीत नहीं होगा।

श्रीरामकृष्ण अपनी विभिन्न साधना पद्धतियों के माध्यम से यह प्रमाणित करते हैं कि मूलतत्व एक हैं, और वहीं साध्य है। विभिन्न मत उस एकतत्व को प्राप्त करने अथवा उसकी अनुभूति के साधन मात्र है। साधन की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व का धार्मिक मान्यताओं में विभेद विद्यमान है। किन्तु मात्र साधन के विभेद के आधार पर धर्म के विभेद को प्रमाणित करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। सब धर्ममार्ग है। लक्ष्य नहीं। मंजिल नहीं । लक्ष्य तो परमात्मा हैं और वह एक है। इस प्रकार रामकृष्ण दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक आधार पर सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त को प्रतीपादित करना चाहते है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक धर्म आदरणीय है। क्योंकि प्रत्येक धर्म उस परमतत्व को जानने या मानने का साधन मात्र है। इस साधन के सम्बन्ध में यह कहना की केवल मेरा ही साधन उपयुक्त हैं तथा दूसरे का साधन अनुपयुक्त हैं उचित नहीं है, प्रत्येक साधन होने के नाते उचित हैं। इस प्रकरण में श्रीरामकृष्ण यह स्वीकार करते हैं कि धर्मराज्य में एक प्रबल संघर्ष हैं और इस संघर्ष का समापन केवल सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त के द्वारा ही संभव है।

धर्मराज्य के इस प्रबल संघर्ष के बीच क्या कभी अविच्छिन्न सामंजस्य का होना सम्भव हैं? वर्तमान शताब्दी के अन्त में इस समन्वय की समस्या को लेकर संसार में एक विवाद चल पड़ा है। इस समस्या का समाधान करने के लिए समाज में कई प्रकार की योजनाएँ सोची जा रही हैं और उन्हें कार्य रूप में परिणित करने के लिए नाना प्रकार की चेष्टाएँ हो रही हैं। हम सभी लोग जानते हैं कि यह कितना कठिन हैं जीवन–संग्राम की भीषणता को, मनुष्य के मन में जो प्रबल स्नायविक उत्तेजना रहती है, उसे कम करना मनुष्य एक प्रकार से असम्भव समझता है। जीवन का जो स्थूल एवं ब्रह्मांश मात्र हैं उस वाह्य जगत् में साम्य और शांति स्थापित करना यदि इतना कठिन हैं, तो मनुष्य के अन्तर्जगत में शांति और साम्य स्थापित करना उससे हजार गुना कठिन हैं आप लोगों को थोड़ी देर के लिए शब्दजाल से बाहर आना होगा। हम सभी लोग बाल्यकाल से ही प्रेम, शान्ति, मैत्री, साम्य, सार्वजनीन भ्रातृभाव प्रभृति अनेक बातें सुनते आ रहे हैं। किन्तु इन सभी बातों में से हमारे निकट कितनी ही निरर्थक हो जाती है। हम लोग उन्हें तोते की तरह रट लेते हैं। और यह मानों हम लोगों का स्वभाव हो गया हैं हम ऐसा किये बिना रह नही सकते। जिन सब महापुरूषों ने पहले अपने हृदय में इन महान् तत्वों की उपलब्धि की थी, उन्ही ने इन शब्दों की रचना की है। उस समय बहुत से लोग इसका अर्थ समझते थे। आगे चलकर मूर्ख लोगों ने इन सब बातों को लेकर उनसे खिलवाड़ आरम्भ कर दिया, और अन्त में धर्म को केवल बातों की मारपेंच कर दिया– लोग इस बात को भूल गये कि धर्म जीवन में परिणत करने की वस्तु हैं, धर्म अब 'पैतृक धर्म', 'जातीय धर्म', 'देशी धर्म', इत्यादि के रूप में परिणत हो गया हैं अन्त में किसी धर्म के विश्वास करना देशाभिमान का एक अंग हो जाता है और देशाभिमान सदा एकदेशीय होता है। विभिन्न धर्मों में सामंजस्य–विधान करना बहुत ही कठिन काम हैं फिर भी हम इस धर्मसमन्वयदृसमस्या की आलोचना करेंगे। उक्त धारणा को दृष्टिगत रखते हुए श्रीरामकृष्ण ने यह स्वीकार किया कि जबतक विभिन्न धर्मों में सामंजस्य की स्थापना नही होती तब तक विश्व बंधुत्व की अवधारणा का विकास नहीं होगा। इसलिए उन्होंने अपनी अनुभूतियों एवं विभिन्न साधनामार्गों के माध्यम से विभिन्न धर्मों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया।

श्रीरामकृष्ण ने केवल हिन्दू धर्म की ही साधना नहीं की अपितु उन्होंने इस्लाम धर्म की साधना की, ईसाई धर्म की भी साधना की, अपनी साधना पद्धति एवं दिव्य अनुभूतियों के ही माध्यम से श्रीरामकृष्ण ने यह प्रमाणित किया कि सभी धर्म सिद्धान्ततः एक हैं, क्योंकि यदि सभी धर्म मार्ग हैं तो प्रत्येक मार्ग का गंतव्य एक है। यदि गंतव्य ऐक है तो फिर विभिन्न धर्मों में विभेद कैसा? इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण ने यह स्वीकार किया कि धार्मिक विभेद मात्र अल्पज्ञता है।

हम लोग यह स्मरण कर प्रसन्न होते हैं कि सभी मार्ग ईश्वर की ओर ले जाते हैं तथा विश्व का सुधार इस पर निर्भर नही करता कि सभी ईश्वर को हमारी ही ऑखों से देखें। हम लोगों का आधारभूत विचार यह है कि तुम्हारा सिद्धान्त मेरा नहीं हो सकता और न मेरा तुम्हारा। मैं अपना सम्प्रदाय आप ही हूँ। यह सच है कि हमलोगों ने भारत में एक धार्मिक पद्धति स्थापित की हैं, जिसके विषय में हम विश्वास करते हैं कि संसार में केवल वहीं एकमात्र बुद्धिसंगत धार्मिक पद्धति है। परन्तु हम लोगों का उसकी बुद्धिसंगतता पर विश्वास, उसके सभी ईश्वरोन्वेषकों को अपने में अन्तर्भक्ति करने, सभी प्रकार की उपासनाओं के प्रति उदारभाव रखने, तथा विश्व के ईश्वर के प्रगति विकासशील भावों को सदैव ग्रहण करने के सामर्थ्य के कारण है। हम लोग अपनी पद्धति की अपूर्णता स्वीकार करते हैं, क्योकि सत्य सभी पद्धतियों से अतीत हैं और इसे स्वीकार करने में ही चिरन्तन प्रगति की सम्भावना एवं विकास सन्निहित हैं सम्प्रदाय, पूजापद्धतियाँ तथा धार्मिक पुस्तकें, जहाँ तक मनुष्य के अपने स्वरूप की प्राप्ति में साधनों का काम करती हैं, ठीक है। परन्तु जब मनुष्य वह ज्ञान प्राप्त कर लेता हैं तो वह इन सभी वस्तुओं को त्याग देता हैं श्मैंने वेदो को अस्वीकार किया ये वेदान्त दर्शन के अन्तिम शब्द है। कर्मकाण्ड, भजन तथा धर्मग्रन्थ, जिनमें अन्तर्गत चलकर उसने मुक्ति प्राप्त की, वे सभी उसके लिए अन्तर्धान हो जाते हैं। सोमदृसोम– 'मैं वह हूँ'– शब्द उसके ओठो से फूट पड़ता है। उसके लिए, ईश्वर को 'तू' कहना ईशतिरस्कार हैं, क्योंकि वह शपिता में एकत्व प्राप्त कर लेता हैं।

श्रीरामकृष्ण यह स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक धर्म के वाह्य स्वरूप में विभेद होता है। किन्तु उसके यथार्थ आन्तरिक स्वरूप में कोई भी विभेद नहीं होता। मानवबुद्धि धर्म के वाह्य स्वरूप तक ही सम्बन्धित रहती हैं। परिणामस्वरूप प्रत्येक धर्ममतावलम्बी को अपना धर्म श्रेष्ठ तथा दूसरे का धर्म हीन प्रतीत होता है। यदि अनुभूति आन्तरिक हो अर्न्तदृष्टि हो तो सम्पूर्ण विभेद अपने आप अभेद में परिवर्तीत हो जाता है। उन्होंने यह स्वीकार किया कि हम देखते हैं कि प्रत्येक धर्म के तीन भाग होते हैं मै। अवश्य ही प्रसिद्ध और प्रचलित धर्मों की बात करता हूँ। पहला हैं, दार्शनिक भाग– इसमें उस धर्म का सारा विषय अर्थात् मूलतत्व, उद्देश्य और उनकी प्राप्ति के उपाय निहित होते है। दूसरा हैं, पौराणिक भाग– यह स्थूल उदाहरणों के द्वारा दार्शनिक भाग को स्पष्ट करता है। इसमें मनुष्यों एवं अलौकिक पुरूषों के जीवन के उपाख्यान आदि होते है। इसमें सूक्ष्म दार्शनिक तत्व, मनुष्यों या अतिप्राकृतिक पुरूषों के थोड़े बहुत काल्पनिक जीवन के उदाहरणों द्वारा समझाये जाते है। तीसरा हैं, आनुष्ठानिक भाग––– यह धर्म का स्थूल भाग है। इसमें पूजा–पद्धति, आचार, अनुष्ठान, विविध शारीरिक अंग–विन्यास, पुष्प, धूप, धूनी प्रभूति नाना प्रकार की इन्द्रियग्राह्य वस्तुएँ हैं। इन सब को मिलाकर आनुष्ठानिक धर्म का संगठन होता है। आप देख सकते हैं कि सारे विख्यात धर्मों के ये तीन विभाग हैं। कोई धर्म दार्शनिक भाग पर अधिक जोर देता है कोई अन्य दूसरे भागों पर। पहले दार्शनिक भाग की बातें लेनी चाहिए, प्रश्न उठता है कोई सार्वजनीन दर्शन है या नहीं? अभी तक तो नहीं है। प्रत्येक धर्मवाले अपने मतों की व्याख्या करके उसी को एक मात्र सत्य कहकर उसमें विश्वास करने के लिए आग्रह करते हैं। वे सिर्फ इतना ही करके शान्त नहीं होते, वरन् समझते है कि जो उनके मत में विश्वास नहीं करते, वे किसी भयानक स्थान में अवश्य जायेंगे। कोई कोई तो दूसरों को अपने मत में लाने के लिए तलवार तक काम में लाते हैं। वे ऐसा दुष्टता से करते हों, सो नहीं। मानवमस्तिष्कप्रसूत धार्मिक कट्टरता नामक व्याधि–विशेष की प्रेरणा से वे ऐसा करते है। ये धर्मान्ध सर्वथा कपटहीन होते हैं, मनुष्यों में सबसे अधिक कपटहीन होते हैं, किन्तु संसार के दूसरे पागलों की भॉति उन्हें उचित–अनुचित का ज्ञान नहीं होता। यह धर्मान्धता एक भयानक बीमारी है। मनुष्यों में जितनी दुष्ट बुद्धि हैं, वह सभी धार्मिक कट्टरता के द्वारा जगायी गयी हैं, उसके द्वारा क्रोध उत्पन्न होता है, स्नायु–समूह अतिशय चंचल होता हैं, और मनुष्य शेर की तरह हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण धार्मिक कट्टरता के अथवा धर्मान्धता के पक्षधर नहीं थे क्योकि धर्मान्ध व्यक्ति की दृष्टि में केवल उसी का धर्म श्रेष्ठ होता हैं, अन्य धर्मों में विद्यमान अच्छाईयों को वह कभी भी स्वीकार नहीं करता है। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि सम्पूर्ण विभेद धर्म के आनुष्ठानिक भाग से सम्बन्धित होता है। धर्म का दार्शनिक भाग एक है। धर्म दार्शनिक भाग में

किसी भी प्रकार का विभेद नहीं होता यदि विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के दार्शनिक भाग को दृष्टिगत किया जाय तो उस भाग में किसी भी प्रकार का विभेद प्रतीत नहीं होता, विभेद का प्रारम्भ तो धर्म को पौराणिक भाग से होता है, और आनुष्ठानिक भाग में वह पूर्ण विकसित हो जाता है। अधिकांश धार्मिक भावनाएं धर्म के पौराणिक एवं आनुष्ठानिक भाग से ही सम्बन्धित होती हैं इसलिए प्रत्येक धर्म एक दूसरे के विपरीत प्रतीत होता है। और एक दूसरे का विरोधी भी प्रमाणित होता है। जबकि दार्शनिक दृष्टि से धर्म के मूल सिद्धान्तों में उसके दार्शनिक स्वरूप में किसी भी प्रकार का विभेद नहीं होता। सभी धर्मों का अपना अपना पुराण– साहित्य हैं, किन्तु सभी कहते है– "केवल हमारी पुराणोक्त कथाएँ कपोकल्पित उपकथा मात्र नहीं।" इस बात को मैं उदाहरण द्वारा समझाने की चेष्टा करता हूँ। मेरा उद्देश्य–मेरी कही बातों को उदाहरण के द्वारा समझाना मात्र है– किसी धर्म की समालोचना करना नहीं। ईसाई विश्वास करते हैं कि ईश्वर पण्डुक (एक प्रकार का कबूतर) का रूप धारण कर पृथ्वी में अवतीर्ण हुए थे। उनके निकट यह ऐतिहासिक सत्य है– पौराणिक कहानी नहीं। हिन्दू लोग गाय को भगवती के आविर्भाव के रूप में मानते हैं ईसाई कहता है कि इस प्रकार के विश्वास का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं– यह केवल पौराणिक कहानी और अन्धविश्वास मात्र है। यहूदी समझते हैं, यदि एक सन्दूक के दो पल्लों में दो देवदूतों की मूर्तियाँ स्थापित की जाये तो उस प्रतीक को मंदिर के सबसे भीतरी, बहुत छिपे हुए और और अत्यन्त पवित्र स्थान में स्थापित किया जा सकता है– वह जिहोवा की दृष्टि से परम पवित्र होगाय किन्तु यदि किसी सुन्दर स्त्री या पुरूष की मूर्ति हो तो वे कहते हैं, "एक बीभत्स प्रतिमा मात्र हैं– इसे तोड़ डालों।" यही है हमारा पौराणिक सामंजस्य! यदि कोई खड़ा होकर कहे, "हमारे अवतारों ने इन आश्चर्यजनक कामों को किया" तो दूसरे लोग कहेंगे, "यह केवल अन्धविश्वास मात्र हैं।" किन्तु उसी समय वे लोग कहेंगे कि हमारे अवतारों ने उसकी अपेक्षा और भी अधिक आश्चर्यजनक व्यापार किये थे और वे उन्हें ऐतिहासिक सत्य समझने का दावा करते है।

जिस अनुसंधान के फल से हम ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करते हैं, मनुष्यों के हृदय में उसकी अपेक्षा दूसरा प्रियतर अनुसंधान कोई नहीं है। अतीत काल में, अथवा वर्तमान काल में मनुष्यों ने 'आत्मा', 'ईश्वर' और 'अदृष्ट' आदि के सम्बन्ध में जितनी आलोचनाएँ की हैं, उतनी आलोचना और किसी विषय की नहीं की। हम अपने दैनिक कर्म, उच्चाकांक्षा और अपने कर्तव्य आदि में चाहे कितने ही क्यों न डूबे रहे, हमारे कठोरतम जीवन–संग्रामों में कभी कभी एक ऐसा विराम का क्षण आ जाता है। जब हमारा मन सहसा रूककर इस जगत्–प्रपंच के पार क्या हैं, इसे जानना चाहता हैं कभी कभी अतीन्द्रिय राज्य का आभास पाता हैं, और उसी के फलस्वरूप उसे पाने की यथासाध्य चेष्टा करता रहता हैं ऐसा सभी देशों, सभी कालों में होता रहा हैं। मनुष्य अतीन्द्रिय–दर्शन की इच्छा करता हैं अपने को विस्तार करने की इच्छा करता हैंय और हम जिसे उन्नति या क्रमविकास कहते हैं, उसको सदा उसी एक अनुसंधान–मनुष्य–जीवन की चरम गति का अनुसंधान, ईश्वरानुसंधान के द्वारा ही माना गया है।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीरामकृष्ण–लीलाप्रसंग, द्वितीय खंड, प्रथम संस्करण, पृ0 206
2. श्री रामकृषण वचनामृतम्, पृ0 320
3. रोमा–रोला विवेकानन्द, अनुवादक, अज्ञेय, रधुबीर सहाय, पृ0 27
4. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, प्रथम संस्करण, पृ0 418
5. श्री रामकृष्ण लीलाकृत, रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ0 387
6. श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंगय स्वामी सारदानन्द, रामकृष्ण कठ, नागपुर
7. श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग, प्रथम खंड, तृतीय संस्करण, पृ0 218
8. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, द्वितीय संस्करण, पृ0 212
9. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, द्वितीय संस्करण, पृ0 503
10. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, प्रथम संस्करण, पृ० 553
11. श्री रामकृष्ण वचनामृत भाग 3 पृ0 550–551
12. श्री रामकृष्ण वचनामृत भाग 3 पृ0 312–315
13. श्री रामकृष्ण वचनामतम्, पृ0 310
14. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, पृ0 290
15. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, 3, पृ0 557
16. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, भाग–1, पृ0 412
17. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, पृ0 418
18. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, प्रथम संस्करण, पृ0 301
19. श्री रामकृष्ण वचनामृतम्, भाग–1, पृ0 309